REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 9 | JUNE - 2018

हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में नारी : बदलते मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में

श्रीमती सविता अण्णाराव नागूर
पीएच्.डी.अनुसन्धान छात्रा, पु.अ.हो.सो.वि.सोलापुर

सत्य, अहिंसा, त्याग, समता, सहिष्णुता, संयम, दया, क्षमा, शांति, करूणा, परोपकार आदि मूल्यों का भारतीय संस्कृति में अक्षुण्ण स्थान है। उसमें स्वार्थ, द्वेष, अहं, तिरस्कार,घृणा आदि को बिल्कुल भी स्थान नहीं है। व्यक्ति के साथ पूरे समाज को विकास की ओर ले जानेवाले और जीवन को सुरक्षित करनेवाले व्यक्ति के सद्गुणों को ही हम जीवन मूल्य मानते हैं। प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर जी ने मूल्य की परिभाषा करते हुए कहा है- "व्यक्ति के सद्गुण और सदव्यवहार ही जीवन मूल्य हैं।"[1] वहीं डॉ. शोभा दीक्षित लिखती है- "जीवन में व्यक्ति की आत्मा संतुष्टि जिन गुणों के द्वारा होती है - वे गुण ही जीवन मूल्य है।"[2] इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मूल्यों के कारण आत्म संतुष्टि मिलती है, व्यवहार में सरलता आती है, जीवन का विकास होता है। जिन गुणों के कारण व्यक्ति का विकास थम जाए, उसे दुःख-दर्द का सामना करना पड़े, उन्हें हम मूल्य कैसे कह सकते हैं? विकास की परिभाषा तो काल सापेक्ष होती है। अतः कालानुरूप जीवन मूल्यों में भी बदलाव दिखायी देते हैं।

शिक्षा से नारी का व्यक्तित्व निखरने लगा है। वह स्वावलंबी होने लगी है। शिक्षा एवं अर्थ स्वायत्तता से उसका आत्मबल बढ़ने लगा है। अब वह केवल चार-दीवारी में कैद रहना नहीं चाहती। उसकी महत्वाकांक्षा पनपने लगी है। मनुष्य होने के सारे अधिकारों को पाने के लिए और अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठापना के लिए वह संघर्ष की परमसीमा पर पहुँची है। परिणामस्वरूप कालौघात असंबंद्ध प्राचीन मूल्यों के विरोध में उसकी जंग छिड़ चुकी है। स्त्री कालानुरूप नए मूल्यों की प्रतिष्ठापना में अग्रसर होने लगी है।

वैश्वीकरण, उदारीकरण और मुक्त अर्थव्यवस्था ने नारी जीवन पर भी प्रभाव डाला है। विदेशी सभ्यता का परिचय हो जाने से उसकी सोच , विचारों में और आचरण में बदलाव आ रहे हैं। स्त्री अब छुआ-छूत का विरोध कर रही है। धर्मनिरपेक्षता का पुरस्कार कर रही है। क्षेत्रीयता एवं सांप्रदायिकता का भी विरोध कर रही है। जातियों की दीवार तोड़कर जाति भेद मिटाना, धर्म भेद मिटाना यह तो समय की माँग है। इस आधुनिक - विज्ञानयुग में जात-पात मानना केवल मूर्खता ही है। प्रगतिशील विचारधारा को अपनाकर ही हम समाज परिवर्तन ला सकते हैं। स्त्रियाँ अब इस परिवर्तन की राह पर प्रशस्त हो चुकी है। आज की स्त्री इस बदलते परिस्थिति के अनुसार अपने विचारों में और व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयत्न कर रही है। समाज-प्रबोधन और शिक्षा-प्रसार के माध्यम से हम जातिभेद की मानसिकता को बदल सकते हैं। 'अंतर्जातीय विवाह' एक ऐसा कदम है, जो जातियों के बीच के दीवारों को गिरा देता है। आलोच्य आत्मकथाओं में हम ऐसी कई

महिलाओं को देख सकते हैं, जिन्होंने अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया है। साथ ही उस विचारधारा पर अमल भी किया है। इसका पुख्ता उदाहरण है 'रमणिका गुप्ता'। घरवालों के प्रचंड विरोध एवं अत्याचार के बाद भी वह अपने फैसले पर अडिग रही। अपनी ईच्छा अनुसार ही उन्होंने जाति से बाहर प्रेमविवाह कर लिया। अपना अनुभव कथन करते हुए रमणिका जी कहती है- "जाति तोड़कर और वह भी प्रेमविवाह ! दोनों ही परिवार की परंपरा और मर्यादा के लिए चुनौती के रूप में देखे जा रहे थे।.... मैं कटिबद्ध थी।" [3] पति की ओर आँख उठाकर देखना भी जिस संस्कृति में पाप माना जाता हो, वहाँ लड़की का अंतर्जातीय प्रेमविवाह करना यह बहुत ही क्रांतिकारक घटना है। कौशल्या बैसंत्री जी को हम रमणिका जी के भी दो कदम आगे पाते हैं। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के विचारों पर चलते हुए उन्होंने जातिवाद पर कड़ा प्रहार किया है। उनका पूरा परिवार ही इसका उदाहरण है। वह लिखती है- "मैं जाति-पाति नहीं मानती। मेरे एक बेटे की पत्नी आयंगार ब्राह्मण है मद्रास की, दूसरे की पत्नी बंगाली कायस्थ और तीसरे की मध्य प्रदेश की। मेरी लड़की का विवाह सिख धर्म के लड़के से हुआ। हमारे सगे रिश्तेदारों की शादियाँ राजस्थानी, नेपाली, गोवानीज, उत्तर प्रदेशीय आदि में हुई हैं। मेरा अपना विवाह भी बिहार में हुआ है। जाति तो हमने कब के झटक दी है।" [4] कौसल्या बैसंत्री जी का परिवार तो जातिवाद एवं प्रांतवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता का मिसाल बन गया है। आज नारी खुद को 'मनुष्य' सिद्ध करते हुए समाज को भी जाति-उपजाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा के परे जाकर मानवता का पाठ पढ़ा रही है।

मैत्रेयी जी की पुत्री सुजाता अंतर्जातीय विवाह करना चाहती थी। तब माँ के नाते मैत्रेयी जी ने भी उसका पुरजोर समर्थन किया। सामान्यतः अंतर्जातीय विवाह और वह भी घर की लड़की का हो तो परिवार ही नहीं, पूरा समाज इसका विरोध करता है। किंतु मैत्रेयी जी ने अपनी भूमिका से सामाजिक-चेतना की एक नयी मिसाल कायम कर दी। लेखिका होने के नाते मैत्रेयी जी ने अपने लेखन में 'कालानुसार बदलाव की परिकल्पना' प्रस्तुत की। साथ ही एक पढ़ी-लिखी, समझदार और प्रगत विचारों की महिला होने के नाते अपने वास्तव जीवन में भी उन परिवर्तनों को उन्होंने अपनाया। सुजाता का विवाह इसी का परिपाक है।

अंतर्जातीय विवाह का समर्थन करते-करते आज नारी 'लिव इन रिलेशन' के द्वार तक आ पहुँची है। स्त्री, पुरुष तथा समाज तीनों के लिए विवाह एक आवश्यक पड़ाव है। समाज की स्थिरता एवं मानव जाति की निरंतरता बनाये रखने के लिए विवाह संस्था अनिवार्य है। किंतु दूसरी ओर यह भी सत्य है कि विवाह संस्था में सबसे प्रताड़ित स्त्री ही है। पत्नी, माँ, बहू आदि विभिन्न भूमिकाओं में स्त्री पर केवल अत्याचार एवं जुल्म ही हुए हैं। इसी कटु अनुभवों के कारण आज की नारी कुछ मात्रा में विवाह संस्था का विरोध करती नजर आ रही है। स्त्री एवं पुरुष के शारीरिक जरूरतों को वह स्वीकारती है, किंतु इन जरूरतों के लिए आजन्म शारीरिक, मानसिक और भावनिक स्तर पर गुलाम बनकर रहना, अपना स्वतंत्र अस्तित्व खोना उसे मंजूर नहीं है। वह विवाह संस्था का बलि बनकर, केवल मादा बनकर रहने के पक्ष में नहीं है। 'लिव इन रिलेशन' जैसा नया मार्ग अपनाकर वह अपना मनुष्यत्व बरकरार रखना चाहती है। 'अन्या से अनन्या' में इस संदर्भ में अपने विचार रखते हुए प्रभा जी लिखती है - "मेरी राय में विवाह एक ओवरडेटेड संस्था है। मैं इस संस्था को ज्यादा तरजीह देने से इनकार करती हूँ, फिर जो कुछ भी है, वह मेरे और डॉक्टर साहब के बीच है ,बिल्कुल हमारा निजी कोना।..." [5] स्त्री को अब उसकी विवाह की बातों में समाज का हस्तक्षेप मंजूर नहीं है। लड़कियाँ अपनी शादी को अपनी निजी जिंदगी को 'निजी बातें' मानती है। लिव इन रिलेशनशिप में रहना हो, या फिर शादी करना हो, लड़कियाँ अब अपनी शर्तों पर ही तैयार होती है। चंद्रकिरण सौनरेक्सा जी की बेटी कुंतल

कहती है- "मैं देखने दिखाने की परेड नहीं करूँगी। ....बस! मुझे कोई यूँ ही देखने न आये।"[6] मर्जी के खिलाफ तय हुए अनमेल विवाह के प्रति विरोध प्रकट कर न पाने के कारण बीते काल में मैत्रेयी जी की सहेली 'निशी खरे' ने खुदकुशी कर ली थी। आज कुंतल के रूप में आगे की पीढ़ी पूरे आत्मविश्वास से अपना भविष्य अपने हाथ में ले रही है। अपनी शर्तों पर, अपनी मर्जी से जी रही है। किसी के रहमों-करम पर नहीं बल्कि खुद की हिम्मत पर जी रही है। खुद की अलग पहचान बनाने के लिए वह प्रयासरत है। अपने व्यक्तित्व एवं अस्मिता के प्रति वह जागृत हो गई है। तभी तो रमणिका गुप्ता जी ठोंस शब्दों में कहती है- "मुझे लोग मेरे कारण पहचाने, प्रकाश की पत्नी होने के कारण नहीं।" [7] रमणिका जी ने ना केवल स्वयं की अस्मिता बरकरार रखी, बल्कि अन्यों की अस्मिता को जगाने का काम भी किया है। चुल्हे-चौके की परिधि को लाँघकर शिक्षा एवं अर्थार्जन के साथ स्त्री अब स्वावलंबी बन रही है। रमणिका ने अपना खुद का परिवार सुख त्यागकर पीडित स्त्रियों को आर्थिक स्वावलंबन प्रदान करने हेतु बड़ा काम किया है। अपने पति के साथ न जाते हुए रमणिका जी ने धनबाद की स्त्रियों की जीविका एवं उनके आर्थिक स्वावलंबन को महत्व देते हुए वहीं रहने का निर्णय लिया था। मैत्रेयी जी ने भी अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री को जागृत करने का कार्य किया है। धर्म एवं संस्कृति के नाम पर स्त्री पर जो बंधन डाले जाते हैं, उनके खिलाफ उन्होंने आवाज उठाया है। वह कहती है - "मुझे स्त्री जीवन की वह छवि पेश नहीं करनी है, जो मर्यादा, शील-शुचिता और इज्जत के नाम पर स्त्री की नकली तस्वीर है, दमन और दबाव के कारण आँखें झुकाये हुए.... आवाज को घूँटे हुए... हाथ-पाँवो को सेवा में समर्पित किए हुए..... मुझे ऐसी जिंदगी देखकर ठेंस लगती है।" [8] यह बात स्पष्ट है कि स्त्री अब कल्पना में भी खुद को अबला के रूप में देखना नहीं चाहती। अपने पुराने रूप को त्यागकर वह आगे बढ़ाना चाहती है।

स्त्री को अब झूठे मान-सम्मान तथा झूठे बड़प्पन के फाँसे में फँसकर सोने की पिंजरे में रहना भी मंजूर नहीं है। इस संस्कृति में स्त्री को बरसों से झूठा सम्मान और झूठा बड़प्पन देकर मर मिटने के लिए बाध्य किया गया है। फिर वह पति के पीछे 'सती' जाना हो या इज्जत आबरू बचाने के लिए 'जौहर' करना हो।पुरुषप्रधान सत्ता किसी न किसी कारण से स्त्री को बलि चढ़ाकर उसे देवी या वीरांगना बना देता है। साथ ही आनेवाली पीढ़ी को भी पुरुषों के लिए त्याग और बलिदान करने के लिए प्रेरित करता है। किंतु अब स्त्रियाँ जान गई है कि त्याग, बलिदान जैसे बड़े-बड़े शब्दों की आड़ में पुरुषप्रधान संस्कृति केवल खुद का स्वार्थ ही साधती है। त्याग-बलिदान इन मूल्यों के मायने बदल रहे हैं। आज की स्त्री का मानना है कि त्याग-बलिदान के नाम पर स्त्री ने आज तक केवल आत्महत्या और आत्मघात ही किया है। इस संदर्भ में मैत्रेयी जी ने अपने विद्यार्थी जीवन की एक घटना का संदर्भ दिया है - उनके पाठ्यक्रम में 'हाड़ी रानी' नामक कहानी थी। इस कहानी में हाड़ी रानी का पति, जो राजा था, अपनी नई नवेली दुल्हन को छोड़कर युद्ध लड़ने के लिए तैयार न था। अंत में हाड़ी रानी शीश काटकर थैली में रख देती है। तब राजा युद्ध में चला जाता है। वीरांगना स्त्री की कथा के रूप में इसे पढ़ाया जाता था । किंतु मैत्रेयी जी को यह दृष्टिकोण पसंद नहीं आया। अपने विचारों की दिशा स्पष्ट करते हुए उन्होंने अपने अध्यापक से कहा- "नहीं सर यह वीरता की नहीं, मजबूरी की मिसाल है। यह बलिदान नहीं आत्महत्या का उदाहरण है। आत्महत्या भी इसलिए कि पति अपनी पत्नी के चरित्र की चिंता न करें। ऐसा सिपाही बहादुर कहलाएगा यह अन्याय है। अन्याय..... जिसे न्याय माना गया।" [9] मैत्रेयी जी की दृष्टि से देखा जाये तो इस घटना को लेकर बहुत से विचार सामने आते हैं। गौर से सोचा जाये तो लगता है, राजा को अपनी पत्नी पर विश्वास नहीं था। पत्नी के चारित्र्य पर अविश्वास जताकर एक प्रकार से राजा पत्नी की सतित्व का अपमान ही कर रहा था। मैत्रेयी जी का सोचना गलत नहीं लगता। स्त्री

को अपने अधिकार में रखने के पुरुषों के सारे पैंतरे अब स्त्री जान गई है। इसी कारण अब वह त्याग, बलिदान, प्यार इन जैसे भावनात्मक फाँसे में फँसकर पुरुषों का शिकार बनना नहीं चाहती है। स्त्री अब अधिक प्रैक्टिकल होते हुए अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए अपने खुद के नये मूल्यों का निर्माण कर रही है।

भावनात्मक फाँसे के साथ ही स्वर्ग-नरक का डर दिखाकर भी स्त्री को दबाया जाता था। आज की स्त्री स्वर्ग-नरक के चक्कर में अटकती नहीं। संस्कृति, धर्म और सामाजिक रुढि-परंपराओं के नाम पर चल रहे इस दमनशाही का वह विरोध कर रही है। आज के दिन उसे 'मनुष्य' बनकर जीना है। उसे ना आनेवाले कल का सोचना है और ना ही मृत्यु के बाद मिलनेवाले 'स्वर्ग-नरक' के बारे में। मैत्रेयी जी तो कहती है- "सतीत्व के दम पर मुझे स्वर्ग मिल जाए (अगर मिलता हो तो), वह स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, जिससे मैं भविष्य की दिशा और रास्ते तय कर सकूँ।" [10] इससे स्पष्ट होता है कि आज की स्त्री न ही परंपराओं की गुलाम बनना चाहती है और न ही देवी बनकर सोने के पिंजरे में रहना चाहती है। वह तो बस मनुष्य बनकर जीना चाहती है।

मैत्रेयी जी की माताजी कस्तूरी ना इन परंपराओं की गुलाम बनी और ना ही अपनी बेटी को गुलाम बनने दिया। पति के मृत्यु के बाद उन्होंने ना सती जाना स्वीकारा और ना ही दूसरी शादी कर फिर से बंधनों में जखडना स्वीकारा। दूसरी शादी की सलाह पर अपनी माँ को भी वह खड़े बोल सुनाती है। कस्तूरी जी कहती है- "कह देना धोबिन भाभी, दूसरा खसम करना मतलब कि फिर से गुलामी में जाना और कस्तूरी किसी गुलाम-मिट्टी की नहीं बनी।" [11] पति के मृत्यु के बाद परिवार, समाज और गाँव के विरोध में जाकर कस्तूरी जी ने शिक्षा का मार्ग अपनाया। अपने और अपनी बेटी के भविष्य के लिए उन्होंने एक नयी राह चुनी। अपनी बेटी मैत्रेयी के कान छिदवाने की बात तक उन्हें रास नहीं आती थी। अपनी बेटी को इन बँधनों में बाँधकर गुलामी के लिए तैयार करना कस्तूरी को बिल्कुल मंजूर नहीं था। अर्थहीन परंपराओं का खंडन करते हुए कस्तूरी जी ने अपने जीवन में शिक्षा के मूल्यों की स्थापना की।

स्त्री को बंधनों में जकड़ने के लिए समाज के पास और एक बेडी थी - 'सुहाग चिन्ह'! एक समय था जब स्त्री के लिए उसके सुहाग चिन्ह बड़े मायने रखते थे। सुहाग चिन्ह धारण करना उसके लिए सौभाग्य की बात होती थी। सुहाग चिन्ह का न पहनना उसकी खुद की नजरों में और समाज की नजरों में बड़ा अपराध था। किंतु आज स्त्री को सुहाग चिन्ह बेड़ियों जैसी लगती है। वह सोचती है कि इनके माध्यम से पुरुषप्रधान समाज उसे बंदी बनाकर रखना चाहता है। मैत्रेयी जी अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखती है- "सुहाग चिन्ह मेरा वजूद रौंदने लगे। ...... मंगलसूत्र वगैरह मुझे सदा उस गाय के घटमल्ला (रस्सी में लकड़ी की मोटी कड़ी बाँधकर गले में लटकाया जाता है) जैसा लगता है जिसे मरखनी समझकर पहनाया जाता है।" [12] आज की तारीख में मैत्रेयी जी की तरह कई औरतों के मन में सुहाग चिन्हों को लेकर रोष है। अतः वे इनका विरोध करती है। हर एक स्त्री के मन में सवाल होता है कि अगर पत्नी पति के नाम का सुहाग चिन्ह पहनती है तो फिर पति क्यों नहीं पहनता? इस परंपरा में भी सामंती विचारों का प्रभाव दिखता है। स्त्री-पुरुष लिंगभेद दृष्टिगोचर होता है। इस भेद को मिटाने हेतु ही शायद आज की पढ़ी-लिखी स्त्री इस रिवाजों का विरोध कर रही है। जहाँ पूरी तरह से इस रिवाज को उखाड़ फेंकना असंभव है, वहाँ अन्य तरीके से अपना विरोध जताती है। जैसे कि चूड़ियों की जगह घड़ी पहनना, मंगलसूत्र के बदले फॅन्सी लॉकेट पहनना आदि।

इन रिवाजों के साथ ही अब अन्य धार्मिक व्रत-उपवासों के बारे में भी नारी तर्क कर रही है। प्रत्येक व्रत-उपवास पति की भलाई से ही जुड़े हैं और इन व्रत-उपवासों से नारी के सतीत्व को ही आँका जाता है। यह

बात अब नारी जान गई है। इतने पुराने धर्म-संस्कृति में ऐसा एक भी विधि-विधान, व्रत-उपवास या रिवाज नहीं है, जो पति अपनी पत्नी के लिए करता हो। इससे बात साफ हो जाती है कि पुरुषों द्वारा अपने स्वार्थ हेतु ही इन रीति-रिवाजों का निर्माण किया गया है। इसीलिए आज की स्त्री इन कर्मकांडों को नकार रही है। मैत्रेयी जी इस संदर्भ में अपनी माता कस्तूरी का उदाहरण देते हुए लिखती है - "ज्यादातर त्यौहारों में व्रत की अनिवार्यता होती है, जो भूखमरी को मात देने का नायाब तरीका है। कस्तूरी सुहाग के व्रतों में रेशम कुँवर की कहानी पढती है। सती का अर्थ समझाती है और कहती है - जलकर मर जाने का कैसा व्रत? भस्म हो जाना भी कोई धर्म है? मरने के बाद लोग पूजे इसलिए जिंदगी खत्म कर दो?" [13] गाँव में रहनेवाली कस्तूरी जैसी महिलाएँ भी अब खोखले रुढि-परंपराओं का विरोध कर रही है। यह एक सकारात्मक पहल ही है।

इस संस्कृति में कई धार्मिक विधियाँ भी हैं, जिनमें स्त्री के प्रति भेदभाव स्पष्ट रूप से उभर आता है। किसी भी धार्मिक विधि में स्त्री को घर के प्रमुख के नाते पूजा के लिए बिठाया नहीं जाता। इसके खिलाफ भी स्त्री आवाज उठा रही है। कृष्णा अग्निहोत्री जी अपनी माता की बरसी मनाना चाहती थी। रिवाजानुसार यह विधि केवल बेटा या घर का कोई पुरुष ही कर सकता है। यह विधि करने का अधिकार स्त्री को नहीं दिया गया। इसलिए नियमानुसार कृष्णा जी का विरोध किया गया। किंतु कृष्णा जी ने इन पुरानी रिवाजों को तोड़कर नयी रीति बनाई। अपना अनुभव कथन करते हुए कृष्णा जी लिखती है - "मेरी माँ की बरसी मनाने से मना किया तो मैंने उसे बहन श्यामा के साथ होशंगाबाद नर्मदा तट पर पूरा करने का निर्णय लिया। मैंने पुनः इस अपवाद का विरोध किया कि लड़की है यह कर्म नहीं कर सकती।"[14] कृष्णा जी ने माँ की बरसी मनाकर न केवल धार्मिक रूढियों को बदलने का साहस किया, बल्कि अपनी पैतृक संपत्ति में अपना हक माँगकर सामाजिक रिवाजों को तोड़ने का ढाढस भी दिखाया। कानूनन स्त्री को पैतृक संपत्ति में अधिकार है। किंतु यह बातें कागज तक ही सीमित है। क्योंकि बचपन से ही स्त्री को भावनात्मक रूप से अभिभूत किया जाता है। उसे भावनिक स्तर पर ऐसी पट्टी पढ़ाई जाती है कि जरूरत होने पर भी वह पिता की संपत्ति में अपना हक नहीं माँगती। किंतु कृष्णा जी ने हिम्मत जुटाते हुए अपने पिता की संपत्ति में अधिकार जताया। हाँ, यह बात अलग है कि उन्हें कुछ मिला नहीं, किंतु वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत थी। 'लोग क्या कहेंगे' के फाँसे में वह फँसी नहीं। अपनी उपजीविका एवं बच्ची की भविष्य हेतु अपने पैतृक संपत्ति में हक माँगने का ढाढस उन्होंने दिखाया। इस प्रकार स्त्री अब पुराने धार्मिक रूढ़ियाँ ही नहीं बल्कि सामाजिक रिवाजों को भी तोड़कर नए आयाम रच रही है।

कृष्णा अग्निहोत्री जी ने जहाँ भाई की जगह खुद माँ की बरसी मनाई, वहाँ चंद्रकिरण सौनरेक्सा उनसे भी एक कदम आगे बढ़ी। चंद्रकिरण जी के पिताजी आर्य समाज की विचारधारा के प्रभाव में थे। उन्होंने धार्मिक नियम और कर्मकांडों को अपने जीवन से हटा दिया था। चंद्रकिरण और उनके परिवार ने पिताजी के मृत्यु के बाद भी उनके विचारों को बरकरार रखा। चंद्रकिरण जी लिखती है - "तेरहवें दिन, बाबूजी की इच्छानुसार अनाथालय के बच्चों को खाना खिलाया गया और दान हुआ।" [15] पिताजी की तेरहवीं पर पिंडदान ना करना, यह एक बहुत बड़ा कदम था। इस कदम को उठाकर मानो चंद्रकिरण जी और उनके परिवार ने बरसों पुराने मूल्यों में सुधार लाने की शुरुआत ही कर दी हो। 'पिंडदान के कर्मकांडों के बदले जरूरतमंद, अनाथ बच्चों को खाना खिलाना' इस सुधारवादी पद्धति का कई लोगों ने स्वीकार भी किया। कालानुरूप अर्थहीन एवं निरूपयोगी साबित हो रहे मूल्यों में, नियमों में बदलाव लाना जरूरी है और इस कार्य में स्त्री अग्रसर है।

धार्मिक मूल्यों एवं धार्मिक रीति-रिवाजों के संदर्भ में भी नारी अपने विचारों में बदलाव ला रही हैं। पहले स्त्रियाँ इन रीति-रिवाजों और मूल्यों का पालन करना अपना परम कर्तव्य मानती थी। व्रत-उपवास, पूजा-पाठ, पंडितों को दान इन सब में स्त्री का जीवन उलझ गया था। आज शिक्षा ने स्त्री को नया दृष्टिकोण दिया है। इन सब कर्मकांडों के परे जाकर सोचने-विचारने की क्षमता उसमें आ गई है। अब स्त्री संस्कृति की अंधी उपासक नहीं रही। उल्टा धर्मांध बने लोगों के आँखों में अंजन डालने का काम कर रही है। इस संदर्भ में कृष्णा जी लिखती है- "मनभर दूध-फल, मिष्ठान्न, नारियल, मेवा व रुपया शिव को चढ़ता था, चढ़ता रहा, लेकिन भारत के गरीब बच्चे दूध को तरसते थे, तरसते रहे, तरसते हैं।..... धर्म का यह कैसा रूप है, जहाँ बाहर भिखारियों की भीड़ बढ़ रही हैं। अंदर पुजारी पनप रहा है।" [16] आज की स्त्री जान गयी है कि भूखे, नंगे, गरीब को खिलाना ही सच्चा धर्म है। भगवान के नाम पर पंडे-पुरोहितों की झोलियाँ भरना अधर्म का काम है। ऐसा आचरण मूल्यहीन है। इन बातों को वह ना सिर्फ समझती है बल्कि समाज को समझाती भी है। रमणिका गुप्ता जी की जीवन की एक घटना यहाँ उद्धृत है - रमणिका जी गरीब मजदूर किसानों के, भूमिहीनों के हक में लड़ती थी। एक बार मजदूर हड़ताल पर चले गए। उन गरीबों के घर खाने के लिए दाना भी नहीं था। इसी बीच कुछ राजनीतिज्ञों और मालिकों ने मिलकर बड़े यज्ञ का आयोजन किया था। उस यज्ञ में पुजारियों को अन्नदान किया जा रहा था। उस वक्त अन्न की ज्यादा जरूरत तो उन मजदूरों को थी। गलत जगह अपना धन लुटानेवाले लोगों को रमणिका जी ने डाँट-फटकार लगाकर समझाया कि "यज्ञ में इतना सामान नष्ट करने की बजाय यदि एक दो ट्रक चावल मजदूरों को भिजवा दें तो वह और डटकर लड़ेंगे। यह भिक्षुओं को खिलाने से तो बेहतर होगा।"[17] आज धर्म-संस्कृति के नाम पर चल रहे कर्मकांडों का स्त्री विरोध करने लगी है। साथ ही विशाल मानवता की दृष्टि अपनाते हुए विज्ञान-निष्ठ मूल्यों की पक्षधर बन रही है।

अपने विश्वास, श्रद्धा और निष्ठा का प्रदर्शन भी स्त्री को प्रिय नहीं है। अब 'लोग क्या कहेंगे' के डर से वह मुक्त होने लगी है। स्त्री अब अपने मन की सुनती है और आत्मविश्वास से वही करती है, जो उसे सही लगे। यहाँ मन्नू जी का उदाहरण द्रष्टव्य है। वैसे तो मन्नू जी श्रद्धालु और धार्मिक थी, किंतु मंदिर या तीर्थ स्थानों पर जाना उन्हें भाता नहीं था। इसीलिए उज्जैन में अपने साथियों द्वारा बहुत आग्रह किये जाने पर भी वह महाकालेश्वर मंदिर नहीं गई। हिंदू होकर भी मंदिर ना जाने से साथियों के मन में गलतफहमी तैयार हुई। मन्नू जी अपने विचार स्पष्ट रूप से लिखती है - मंदिरों या तीर्थ स्थानों में जाने में मेरी न कभी कोई रुचि रही न संस्कार।" [18] मन्नू जी ने वही किया जो उन्हें सही लगा। मैं नहीं गयी तो मेरे साथी मेरे बारे में क्या सोचेंगे,यह विचार उन्होंने नहीं किया। अतः धर्म का भय, समाज का भय और लोग क्या कहेंगे का भय स्त्री अब धीरे-धीरे मिटा रही है।

समाज का भय, परिणामों का भय छोड़कर स्त्री अब अपने मूल्यों एवं संस्कारों पर अडिग रहने लगी है। ऐसे स्त्रियों को जीवन में ज्यादा तकलीफ उठानी पड़ती है। इसका उत्तम उदाहरण है अपाहिज बबुई। बबुई कृष्णा अग्निहोत्री जी की बुआ की बेटी थी। वह अपाहिज थी। शिक्षा विभाग में नौकरी करती थी। गाँव के सरपंच ने कुछ लड़कों को गलत तरीके से पास करने के लिए बबुई को कहा था। किंतु इस गलत काम में बबुई ने सरपंच का साथ नहीं दिया। अपने ओहदे और रुतबे का फायदा उठाकर सरपंच बबुई पर दबाव डालता रहा। फिर भी बबुई अपने मूल्यों से हटी नहीं तो सरपंच द्वारा अधिकारियों से शिकायत कर उसे इंटीरियर में भेज दिया गया। जहाँ से उस अपाहिज स्त्री को एक मैल लंगड़ा कर चलने के पश्चात सड़क पर बस पकड़नी

पड़ती।' [19] बबुई ने असत्य एवं गलत काम का साथ देने से इनकार किया।इसी कारण उसे कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। बबुई सच में काबिले तारीफ है, क्योंकि उसने खुद के फायदे या सुविधा के लिए गलत का साथ नहीं दिया। इसके विपरीत घटना हमें गुड़िया भीतर गुड़िया में देखने को मिलती है। समाज में गलत रास्ते पर जा रहे युवक-युवतियों को सही रास्ता दिखाना बड़ों का काम है। इस संदर्भ में मैत्रेयी जी ने अपना अनुभव साँझा करते हुए लिखा है- "मकान मालकिन के घर में जो रिश्तेदार लड़की रहती है, वह अपने ट्यूशन मास्टर से..... मैंने अपनी आँखों देखा और आँखें बंद कर ली। मकान मालकिन को बताया, वह चुप्पी मार गई। फिर बोली यह, भाग न जाए यही चिंता है। इश्कविश्क तो चलता रहता है।" [20] मकान मालकिन की यह भूमिका मूल्यों की हो रही अधोगति को स्पष्ट करती है। गलत रास्ते पर जा रहे युवक-युवतियों को सही रास्ता दिखाना बड़ों का काम होता है। किंतु मकान मालकिन अपने कर्तव्य और जिम्मेदारी से बेदरकार बनके मुँह मोड़ लिया। उसे तो केवल किराये की चिंता थी। आज मूल्यों की जगह पैसे को जो अधिक महत्व प्राप्त हो रहा है, उसका असर स्त्रियों की मानसिकता पर भी हो रहा है। यही बात इस घटना से सामने आती है। इस बदलते जमाने में सदाचार, सच्चरित्र व सत्शीलता इन मूल्यों का मूल्य भी कम-अधिक होते नजर आ रहा है।

सच्चरित्र और सत्शील की परिभाषा करते हुए भी समाज और संस्कृति ने दोहरापन अपनाया है। छल-कपट से अगर कोई पराया पुरुष स्त्री देह का उपभोग लेता है तो समाज स्त्री को ही कठघरे में खड़ा कर देता है। उस स्त्री को अपवित्र मानकर घरवाले त्याग देते हैं। किंतु उस स्त्री देह को भोगनेवाला पुरुष क्यों अपवित्र नहीं होता? जोर-जबरदस्ती करनेवाला पुरुष क्यों समाज से निष्कासित नहीं होता? इस प्रकार पवित्र-अपवित्र होना जैसी बातें पुरूषप्रधान व्यवस्था के प्रावधान है और कुछ नहीं। किंतु समाज व्यवस्था की इस छल से अनभिज्ञ कई लड़कियाँ, स्त्रियाँ अपराध बोध की भावना में अपना जीवन समाप्त कर देती है। प्रभा खेतान जी उन तमाम स्त्रियों को समझाना चाहती हैं कि 'अपवित्रता' का भ्रम पुरुषप्रधान समाज व्यवस्था द्वारा फैलाया गया है। अगर कुछ ऐसा होता तो पुरुषों को भी लागू होता। पुरुष भी अपवित्र होते। किंतु पुरुषों को अपवित्र नहीं माना जाता। मतलब साफ है, यह सब पुरुषों ने अपने स्वार्थ हेतु बनाए गए मूल्य है। दूसरे पुरुषों से मिलने पर प्रभा खेतान जी लिखती है, " क्या सच में मेरी देह मलिन हो गई, पराये पुरुष को छूने से मैं अपवित्र हो गई? भ्रष्ट हो गई? लेकिन मुझे तो ऐसे किसी अपवित्रता का बोध नहीं होता। ... यह महज एक घटना थी।" [21] प्रभा जी अपनी तर्काधिष्ठित विचारों से, आचरण से 'स्त्री देह' के संबंध की पुरानी धारणाओं को तोड़ने का प्रयास करती नजर आती है। वह समाज को स्त्री देह की ओर देखने का एक नया नजरिया दे रही है।

सच तो यह है कि निसर्गतः स्त्री की भी कुछ शारीरिक जरूरतें होती हैं। किंतु अपनी संस्कृति और धर्म में इस विषय पर बोलना भी पाप माना जाता है। उन जरूरतों को पूरा करना तो दूर की बात। बरसों से नारी अपनी ईच्छा-आकांक्षाओं को दबाते आयी है। निसर्गसुलभ यौन-भावनाओं का दमन करते आयी है। आज बदलती परिस्थितियों ने स्त्री को अपनी भावनाओं को खुलकर प्रकट करने का साहस प्रदान किया है। इतना ही नहीं अपनी यौन तुष्टि हेतु भी वह खुद कदम आगे बढ़ा रही है। 'स्त्री भी एक मनुष्य है, उसकी भी भावनाएँ होती है' इस बात को स्वीकारने का वक्त आ गया है। कृष्णा जी भी बेझिजक और स्पष्ट रूप से अपनी भावनाओं को शब्दबद्ध करते हुए लिखती है -"इस नंगे सत्य से इनकार नहीं कर सकती कि भीतर बैठे औरत को सदा एक ऐसे पुरुष की प्रतीक्षा रही जो उसे प्रेमी-सा सहलाए और उसे आलिंगनबद्ध कर इतना

व्याकुल कर दे। " [22] अपनी यौन ईच्छाओं का जाहिर प्रकटीकरण करना इस संस्कृति में स्त्री का अब तक का सबसे साहसी कदम रहा है। आज स्त्री ऐसा साहस बार-बार कर रही है।

केवल शारीरिक ही नहीं, स्त्री की अपनी मानसिक और बौद्धिक आवश्यकताएँ भी होती है। अपने सपनों को पूरा करने की चाह उसके मन में भी होती है। ध्येय प्राप्त करने की जुनून उसमें भी होती है। खुद को सिद्ध करने की ललक उसमें भी होती है और आज शिक्षा पाकर स्त्री अपना कर्तृत्व सिद्ध कर रही है। मैत्रेयी, कृष्णा अग्निहोत्री, मन्नू भंडारी, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, कौशल्या बैसंत्री आदि अपने बलबूते साहित्य क्षेत्र की सशक्त हस्ताक्षर बनी हैं। प्रभा खेतान जी लेखिका होते हुए भी व्यापारिक दुनिया में सम्मानजनक मुकाम पर पहुँची। प्रभा जी ने चुल्हे-चौकी की परिधि को लाँघकर शादी, घर, परिवार, बच्चे इन सीमाओं को तोड़कर अपनी मर्जी से अपना नया विश्व बनाया। उन्हें व्यापार और व्यवसाय की बहुत गहरी समझ थी। व्यापार के प्रति उनके मन में समर्पण भाव था। वे लिखती है- "व्यापार भी एक साधना है, जैसे और तरह की साधना या साहित्य साधना है। माना कि दोनों बिल्कुल अलग अलग हैं मगर बिना साधना के कुछ नहीं हासिल होने वाला। साधक होने की क्षमता उसी व्यक्ति में रहती है, जो अनुशासन में बँधे, श्रम करें, एकोन्मुखी अग्नि की तरह जले, जलता रहे।" [23] अपने काम के प्रति प्रभा जी की निष्ठा और उनकी मेहनत, उनकी साधना को सिद्ध करता है। आज तक शायद किसी पुरुष ने व्यापार को एक साधना की दृष्टि से देखा हो। उनकी यह महीम समझ, उनके विचार इस बात का प्रतीक है कि स्त्री की भूमिका और उसका दृष्टिकोण बदल रहा है। स्त्री किसी भी क्षेत्र में जाए, लगन और साधना से उस क्षेत्र में ऊँचा मकाम हासिल करती है। आज चूल्हे-चौके की परिधि लाँघकर एक स्त्री अपने क्षेत्र में इतनी गहरी साधना कर रही है, यह बात बदलते सामाजिक मूल्यों के एवं बदलते सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में देखी जाए तो एक युग प्रवर्तक बात है। हाँ! पूरे दावे के साथ अब हम यह कह सकते हैं कि सांस्कृतिक परिवेश तथा बदलते मूल्यों के साथ-साथ स्त्री भी अंतर्बाह्य परिवर्तित हो रही है।

संदर्भ :-

1. रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ - 372
2. डॉ. शोभा दीक्षित - साहित्य में जीवन मूल्य, पृष्ठ - 58
3. रमणिका गुप्ता - हादसे, पृष्ठ - 24
4. कौसल्या बैसंत्री - दोहरा अभिशाप, पृष्ठ - 116
5. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या, पृष्ठ - 85
6. चंद्रकिरण सौनरेक्सा - पिंजरे की मैना, पृष्ठ - 349
7. रमणिका गुप्ता - हादसे, पृष्ठ - 26
8. मैत्रेयी पुष्पा - गुड़िया भीतर गुड़िया, पृष्ठ -338
9. मैत्रेयी पुष्पा - गुड़िया भीतर गुड़िया, पृष्ठ- 214
10. मैत्रेयी पुष्पा - गुड़िया भीतर गुड़िया, पृष्ठ - 18
11. मैत्रेयी पुष्पा - कस्तूरी कुंडल बसै, पृष्ठ - 32
12. मैत्रेयी पुष्पा - गुड़िया भीतर गुड़िया, पृष्ठ - 244
13. मैत्रेयी पुष्पा - कस्तूरी कुंडल बसै, पृष्ठ - 21

14. कृष्णा अग्निहोत्री - और..और.. औरत, पृष्ठ - 61
15. चंद्रकिरण सौनरेक्सा - पिंजरे की मैना, पृष्ठ - 124
16. कृष्णा अग्निहोत्री - लगता नहीं है दिल मेरा, पृष्ठ- 134
17. रमणिका गुप्ता - हादसे, पृष्ठ - 140
18. मन्नू भंडारी - एक कहानी यह भी, पृष्ठ - 182
19. कृष्णा अग्निहोत्री और... और... औरत, पृष्ठ -148
20. मैत्रेयी पुष्पा - गुड़िया भीतर गुड़िया, पृष्ठ -141
21. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या, पृष्ठ - 255
22. कृष्णा अग्निहोत्री - और... और.. औरत, पृष्ठ -140
23. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या, पृष्ठ - 202